International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 456-460

जायसी की विलक्षणता

डॉ0 विजय शंकर मिश्र
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

हिन्दी–साहित्य में मलिक मुहम्मद जायसी (1492–1542 ई.) को वास्तविक प्रतिष्ठा देने का श्रेय आलोचक–कुल–गुरु आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है। सामान्य रूप से हिन्दी साहित्य का इतिहास[1] और विशेष रूप से जायसी–ग्रंथावली[2] में उन्होंने पदमावत, अखरावट और आख़िरी कलाम की महान् विद्वत्तापूर्ण मौलिक समीक्षा करके प्रस्थान–कार्य किया। उनसे पूर्व हिन्दी के प्रथम महान् आलोचक मिश्रबंधुओं (कृष्णविहारी, श्यामविहारी, शुकदेव विहारी) की राय जायसी सहित समस्त सूफी कवियों एवं संप्रदायों के बारे में विशेष सकारात्मक नहीं थी। उन्होंने जायसी को हिन्दी के महानतम कवियों में परिगणित नहीं किया। इसीलिए उनके नवरत्न[3] में जायसी अनुपस्थित हैं। अपने 'विनोद' में मिश्रबंधु ने सूफी काव्य–परम्परा के दीर्घजीवित नहीं होने का कारण देते हुए लिखा है कि, ''यद्यपि सूफी संत मुसलमानीपन को देखते हुए हिन्दू देवी–देवताओं का उचित से कुछ अधिक ही मान करते थे तथापि सूफीवाद भी प्रेमपूर्ण रीति से ही सही, किन्तु भारत में मुसलमानी मत चलाने के प्रयत्न में था अवश्य, और यह अवश्य चाहता था कि हिन्दू मुसलमान बने। प्रेमगर्भित वचनों के भीतर यह भाव बहुत दिन तक छिपा नहीं रह सकता था, इसी से अंततोगत्वा हिन्दुओं ने इससे मुख मोड़ लिया। मुसलमान सहिष्णुता के आधिक्य के कारण इसे पसंद न कर सके। अब यह थोड़े से विद्वानों में केवल साहित्य के नाते पूज्य दृष्टि से देखा जाता है, धार्मिक शिक्षा के रूप में नहीं।''[4] मिश्रबंधु से सहमत होते हुए डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि, ''सूफियों ने नानक इत्यादि पर प्रभाव डाला जैसाकि गुरु ग्रन्थसाहब में उनकी फरीदस्तुति से स्पष्ट है, सूफियों ने तानसेन जैसे अनेक प्रतिभाशाली कलाकारों को मुसलमान बनाया जैसे कि मोहम्मद गौस की कथा से स्पष्ट है, शायद ही कोई बड़ा सूफी फकीर हुआ हो जिसने हिन्दुओं को मुसलमान न बनाया हो। अतः हिन्दुओं पर सूफी मत का प्रभाव अधिक दिनों तक पड़ना संभव नही था। आक्रांता एवं शासक हिन्दू पर तलवार का वार करते थे, सूफी फकीर एवं कवि कलम का।''[5] स्वाभाविक रूप से इन मान्यताओं से संपूर्णतया सहमत होना कठिन है। इनमें आंशिक सचाई अवश्य ही हो सकती है। हिन्दी के सूफी कवियों में नूर मोहम्मद[6] के अतिरिक्त कोई अन्य रचनाकार कट्टर सांप्रदायिक नहीं प्रतीत होता। स्वयं डॉ. रामप्रसाद मिश्र हिन्दी के प्रथम सूफी कवि मौलाना दाऊद के उनकी उदारता के कारण जन्म से हिन्दू होने की संभावना व्यक्त करते हैं। उन्होंने मंझन की उदारता की भी बहुत प्रशंसा की है। जहांगीरनामा (तुज़ुकेजहाँगीरी) के प्रस्तोता एवं अनुवादक तथा नंददास कृत भँवरगीत के संपादक, अनेकानेक ग्रंथों के लेखक–संपादक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के दौहित्र (मिश्रबंधु के अनुसार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की एकमात्र पुत्री विद्यावती इनकी माता थीं) श्री ब्रजरत्नदास ने मंझन को हिन्दू कवि ही मान लिया था क्योंकि उन दिनों मधुमालती के प्रारंभिक अंश प्राप्त नहीं हुए थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि जायसी ने प्रचलित राजनीति के चलते कुछ स्थानों पर सनातम धर्म के देवी–देवताओं का किञ्चित अवमाननापरक उल्लेख किया है[7, 8] तथापि अपनी संपूर्णता में उन पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाना न्यायसंगत नहीं होगा क्योंकि उनकी चिन्ता का केन्द्रीय विषय धर्मशास्त्र और दर्शन नहीं है। ''सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा''[9] सदृश उक्तियाँ संप्रदाय से मुसलमान कवि के सहज उद्‌गार हैं। अपने धर्म को सर्वोत्तम मानना तनिक भी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक पदमावत का प्रश्न है, वह तीव्र प्रेमोन्माद की महान गाथा है।

जायसी का जन्मस्थान अज्ञात है। हालाँकि इस संदर्भ में गाजीपुर की भी चर्चा की जाती है। लेकिन वह अनुमान ही है। वे कहीं से आकर राय बरेली जनपद के जायस नामक स्थान में बस गए थे। प्रसिद्ध है कि अमेठी केराजा रामसिंह उनकी दुआ से पुत्र–लाभ होने के कारण उनका बहुत सम्मान करते थे। वे अमेठी के दुर्ग के पास रहने लगे थे। वहीं पर किसी शिकारी का निशाना चूक जाने से उनकी मृत्यु हुई, ऐसा भी प्रसिद्ध है। ''पदमावत महाकाव्य में चित्तौड़ के राणा रत्नसेन (रतनसेन, रतनसी, रतनसिंह) की रूपवती रानी पद्मिनी या पद्मावती एवं रूपलुब्ध सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की कल्पित लोककथा को सूफ़ी–प्रतीकपद्धति एवं हठयोग–संकेतशैली से संयुक्त कर इतने सरस एवं मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है कि जायसी पंजाबी की प्रसिद्ध प्रेम कथा 'हीर–एँझा के प्रस्तोता वारिस शाह इत्यादि से बहुत आगे बढ़ कर फारसी के हाफिज़, खुसरों, रूमी इत्यादि के स्तर के महाकवि प्रमाणित हो जाते हैं।... जायसी विश्व के सर्वश्रेष्ठ सूफी कवियों में एक हैं।[10]

आचार्य शुक्ल ने पद्मावत को ''पूर्ण जीवनगाथा'' नहीं माना। उनके अनुसार यह 'प्रेमगाथा' या ''शृंगार रस प्रधान' काव्य है।[11] प्रो. विजयदेव नारायण साही ने जायसी–संबंधित समीक्षा में नितांत मौलिक हस्तक्षेप करते हुए इस रचनाकार को हिन्दी का ''प्रथम विधिवत कवि''[12] घोषित करके ''जातीय इतिहास का निर्माण''[13] करने का श्रेय प्रदान किया। उन्होंने महाकवि को समझने के लिए एक सर्वथा नूतन दृष्टि भावकों के विचारार्थ प्रस्तुत की।

मेरी विनम्र राय में मलिक मोहम्मद जायसी के चिंतन के केन्द्र में धर्म एवं उसके दर्शन की कोई धारा नहीं है। वे किसी पारमार्थिक सत्ता की महिमा के गायक नहीं है। उनकी कविता में ब्रह्म का काव्यात्मक निरुपण, अद्वैतवाद, माधुर्य भाव के रहस्यवाद के अंतर्गत अनुभूत होने वाली सौन्दर्यानुभूति, इस सौन्दर्य से प्रेम एवं तद्‌जनित तीव्र विराहानुभूति, योग दर्शन–विशेषकर हठयोग की एक ओर और सूफ़ी तसव्वुफ की दूसरी ओर उपस्थिति उस समय प्रयोग में आते सामान्य साहित्यिक मुहावरों के तौर पर है। उनका लक्ष्य इसमें से किसी की स्थापना नहीं है। इसीलिए पदमावत में उस समय प्रचलित प्रायः समस्त धर्म–साधनाओं के प्रति रुचि प्रदर्शित की गई है, लेकिन उनका लक्ष्य इनमें से किसी भी धारा–विशेष का प्रचार–प्रसार नहीं है। 'आखिरी कलाम' में वे 'कयामत' को विषय

बनाते हैं और अखरावट में भी 'पंथ' चर्चा का विषय बनता है– लेकिन इन दोनों ही कृतियों का साहित्यिक–सांस्कृतिक–दार्शनिक दृष्टियों से कोई विशेष महत्व नहीं है। जायसी को समझने में ये दोनों ही कृतियाँ किसी प्रकार की सहायता नहीं करतीं। मुझे लगता है कि जैसे अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी को संकट से बचाने के लिए विश्वकवि तुलसीदास ने अपने ज्योतिष–ज्ञान के आधार पर रामाज्ञा–प्रश्न[14] लिखी, उसी प्रकार जायसी ने धर्म की मनोवैज्ञानिक ताकत के कहने पर इन ग्रंथों की रचना की।

इसी प्रकार शृंगारिक प्रेम के महाकवि होते हुए भी इस महाभाव का अपनी संपूर्णता में स्थापन जायसी का काव्य–प्रयोजन नहीं है। प्रेम–निरूपण में उनकी गहन–गंभीर विशद–व्यापक रुचि है, लेकिन वह उनका काव्य–लक्ष्य नहीं है। अपने मूल उद्देश्य को पूरा करने के लिए आध्यात्मिक संस्पर्शों से पुलकित राग तत्व तथा संयोग चित्रण उनके सर्वाधिक कारगर साधन हैं। इन अस्त्रों से उन्होंने भरपूर सहायता ली है और इसमें उनका सामर्थ्य भी अपार है।

जायसी किसी प्रकार के राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक विचार–विशेष में भी रुचि नहीं रखते। जिस प्रकार क्रान्तदर्शी कबीर औपनिषिदिक् अद्वैतवाद के नाम पर सामाजिक समता का शंखनाद करते हैं या महाकवि सूरदास लीला–दर्शन के माध्यम से बहुत बड़े पैमाने पर लोकरंजन करते हैं या विश्वकवि तुलसी अवतारवाद को धुरी बना कर विराट मानवतावादी व्यवस्थाओं को वैकल्पिक रूप में प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखते हैं– उस प्रकार का जायसी का कोई विशद सामाजिक उद्देश्य नहीं है। उन्हें व्यापक समाजों से कोई विशेष लेना–देना भी नहीं है। उनकी चिन्ता अंततोगत्त्वा स्वयं अपने प्रति है। यह बात अलग है कि यह 'स्वयं' क्रमशः विस्तार पाते हुए एक बड़ा समूह बन जाता है, लेकिन इतना विराट भी नहीं कि उन्हें आशा एवं विश्वास से मण्डित करके स्वनिर्मित विषाद के घेरे से बाहर निकल सके।

जायसी पूर्वमध्यकाल अथवा भक्तिकाल के संभवतः एकमात्र रचनाकार हैं, जिन्हें आसेतु–हिमांचल समग्र राष्ट्र को प्रभावित करने वाले भक्ति–आन्दोलन से निःसृत मूल्य अधिक आकर्षित नहीं कर पाए। ऐसा तब है, जब पदमावत में स्थान–स्थान पर लोक संस्कृतियों के प्राणपुलककारी निरूपण देखने को मिलते हैं। इसके बावजूद भक्ति अथवा उससे उद्भूत किसी भी मूल्य का विवेचन–विश्लेषण जायसी का प्रकृत विषय नहीं है। उनके प्रबंधकाव्य में प्रेम, शांति और संतोष की बातें 'विवशता' से उद्भूत होती हैं। इन्हें युगीन मूल्यों के तौर पर स्वीकार करके समाजों में प्रतिस्थापित करने में उनकी विशेष रुचि नहीं है। इसी तरह वे भविष्य की कोई योजना बनाने में भी विश्वास नहीं करते। कबीर, सूर, तुलसी की कविता जहाँ 'समाप्त' होती है, वहीं से बारम्बार–असंख्य बार नई ताजगी के साथ आरंभ भी हो जाती है– लेकिन पदमावत विषाद की एक गहन अनुभूति देकर जहाँ खत्म होता है, वहाँ से शुरू नहीं हो पाता। उसे बारंबार पढ़ा जा सकता है, बल्कि पढ़ा जाता है, लेकिन जिस वेदना से उसने भावक को प्रथम पाठ के समय आल्लावित किया था, बाद के पाठों में उसी की पुनरावृत्ति होती है। इसका मूलभूत कारण 'मनुष्य' और उससे जुड़े किसी विराट मूल्य का उनकी चिन्ता का विषय नहीं होना है।

उक्त कारणों से ही जायसी ने एक मौलिक कथा की सर्जना की है। यह उनकी महतोमहीयान् उपलब्धि है। वे सौन्दर्य एवं प्रेमोन्माद के महाकवि हैं। लेकिन उनके यहाँ रूप एवं राग की योजना मानवीय चेतना के आनंद का विषय बनने में रुचि नहीं रखती। वहाँ वह संपूर्णतया अहंमोन्मुखी होते हुए स्वयं के प्रति या इकाई के प्रति या इकाईवादी समूह के प्रति समर्पित है। कवि द्वारा निरूपित प्रेम एवं सौन्दर्य की नैतिकताएँ स्वायत्तशासी हैं। वे स्वयं से परिचालित एवं अनुशासित हैं। इस कारण वे संकुचित तो हुईं, लेकिन उनमें असीम तीव्रता है। वे भावुक सहृदय के मन को सहसा ही विचलित करने में समर्थ हैं। उस युग में रूप–राग के ऐसे स्वरूप की अभिव्यक्ति इतिहास एवं कल्पना पर आधारित मौलिक कथा की सर्जना करके ही हो सकती थी, जो जायसी ने पूरे कौशल से की। पदमावत महामानवों की गाथा है। इसके समस्त चरित्र 'सामान्य' से कोसों दूर हैं। वस्ततुः एवं तत्त्वतः मौलाना दाऊद के चांदायन के अतिरिक्त अन्य समस्त सूफी कहे जाने वाले प्रेमाख्यानों में साधारण मनुष्य की जिज्ञासाएँ, भावनाएँ, चिन्ताएँ अर्थात 'जीवन' समीक्षा का विषय बनता नहीं दीखता। चांदायन अवश्य ही औसत व्यक्ति का विवेचन–विश्लेषण करता है। इसका मूलभूत कारण मौलाना दाऊद की अभिरुचि के साथ–साथ प्रबंधकाव्य की कथा का आधार आभीरों की जातीय लोकगाथा होना है। लोकसाहित्य आम तौर पर शिष्टता, सभ्यता, शालीनता, गरिमा वगैरह–वगैरह का सम्मान एक निश्चित–उचित सीमा तक हीकरता है, यथार्थ की कीमत पर तो हरगिज़ भी नहीं करता। इसीलिए चांदायन का कोई भी चरित्र अनावश्यक रूप से महिमामण्डित नहीं है। वहाँ सब–कुछ अतीव स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मौलाना दाऊद जायसी के स्तर के कवि हैं। इससे तात्पर्य केवल इतना है कि कथा की मौलिक कल्पना करने के अनंतर भी जायसी उसे औसत मनुष्यों की चिन्ताओं–सरोकारों से जोड़ नहीं पाए। पदमावत की नायिका स्त्रियों के शास्त्रकथित श्रेष्ठतम् वर्ग पद्मिनियों की अधिष्ठात्री देवी है। रत्नसेन चित्तौड़ के किले का स्वामी, जाबांज़ प्रेमी, संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी का पति तथा साका करने की भविष्यवाणी से संयुक्त होकर पैदा होने वाला राजा है। अलाउद्दीन खिल्जी समग्र संसार के ऊपर सुशोभित होने वाले साम्राज्य का स्वामी है। राघव चेतन की अभिव्यक्ति–क्षमताएँ तथा सिद्धियाँ असंभव को संभव बनाने में सक्षम हैं। गंधर्वसेन साक्षात् द्वितीय इन्द्र और हीरामन महापण्डित है। पति द्वारा उपेक्षित होने के कारण नागमती अवश्य कुछ समय के लिए साधारण प्रोषितपतिका प्रतीत होती है, लेकिन जंबु द्वीप की श्रेष्ठतम् सुंदरी का स्थायीभाव भी स्वयं की तटस्थ समीक्षा का उत्तर हत्या से देने वाला है। इन सबके कर्म एवं उद्देश्य असाधारण हैं। इसीलिए पदमावत की इकाईयाँ या इकाईवादी समूह स्वर्णकालिक अवस्थाओं के विकट पक्षधर हैं। इन स्थितियों के विगत होने पर वे समाप्त हो जाते हैं। जायसी इसी वर्ग या समूह के सरोकारों के ललित गायक होने के कारण अपने युग के अन्य प्रतिनिधि महाकवियों से अलग प्रतीत होती साहित्यिक प्रतिभा हैं।

जायसी ने अपने अमर महाकाव्य 'पदमावत' का आरंभ हिजरी सन् नौ सौ सत्ताइस अर्थात् पंद्रह सौ बीस ईस्वी में तथा समापन सूर–वंश के संस्थापक शेरशाह सूरी के शासनकाल (1540–45 ई.) में किया–

> सन नौ सै सत्ताइस अहै। कथा अरंभ बैन कवि कहै।।[15]
> सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।।[16]

''पदमावत से उन्हें ख्याति प्राप्त हुई। सुदूर पूर्व में अराकान राज्य के मंत्री मगन ठाकुर ने 'आलो उजालो' शीर्षक से 1650 ई. के लगभग इसका बांग्ला–अनुवाद किया। जायसी पर चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित हो गईं। उनका विग्रह–परिवर्तन (सिंहादि–रूपान्तर, जिसमें में आखेट बने) तक विश्वसनीय माना गया। शेरशाह से उनके परिचय की कल्पना की गई।''[17]

चित्तौड़ का प्रथम पतन अलाउद्दीन खिल्जी के हाथों हुआ। एक बहुत लंबे एवं विकट संघर्ष के अनंतर सोमवार, 26 अगस्त, 1303

ई. को उसे विजित करके सुल्तान ने उसमें अपने ज्येष्ठ पुत्र ख़िज्र खाँ के नाम पर ख़िज्राबाद का निर्माण किया। कालांतर में दो बार और इसका पतन हुआ– 1532 ई. में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के हाथों और 1568 ई. में अकबर के द्वारा। अलाउद्दीन के अभियान में अमीर खुसरो उसके साथ थे। उन्होंने ''नुह सिपेहर'' में इस विकराल युद्ध की विस्तृत जानकारी दी है। स्वयं को ''सुल्तान का गुलाम''[18] कहते हुए खुसरो ने सुल्तान द्वारा भीषण नरसंहार करने के विवरण भी दिए हैं। लेकिन पर्याप्त विस्तृत वर्णनों में उन्होंने कहीं भी पद्मिनी रानी के प्रसंग का उल्लेख नहीं किया है। यदि पदमावती वास्तविक–ऐतिहासिक चरित्र होती, तो वे उस पर अवश्य ही कुछ–न–कुछ लिखते। उन्होंने ''दिवलरानी ख़िज्र खाँ'' और ''शीरीं–खुसरू'' सदृश मसनवी लिखीं। यदि पद्मिनी से संबंधित कोई घटना घटी होती, तो वे उस पर काव्य–रचना करने से रुक नहीं सकते थे। प्रो. रमेशचन्द्र मजूमदार[19] ने किसी भी समसामयिक ग्रंथ अथवा शिलालेख–अभिलेख में अलाउद्दीन खिल्जी की पदमावती के प्रति आसक्ति का उल्लेख नहीं किया। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने विजित राज्यों की रानियों को बेगम बनाने की प्रथा शुरू की थी। गुजरात के राजा कर्णदेव की रानी कमलावती का नाम इस संदर्भ में प्रसिद्ध है। महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' ने उस पर 'प्रलय की छाया'[20] शीर्षक महान् लंबी कविता की रचना की। यदि पदमावती की घटना सत्य होती, तो कमलावती–प्रकरण की भाँति वह भी इतिहास–सिद्ध होती। चित्तौड़ के दुर्ग में पद्मिनी महल आज भी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। यह एक प्रकार का लघ्वाकार जलमहल है। महल की जलसीमा के सामने एक कक्ष है। इस कक्ष में विशाल दर्पण जड़े हैं। किंवदंतियों के अनुसार रानी पदमावती ने जल महल के एक जीने पर कदम रखा था। इससे उनकी छवि कक्ष के विशाल दर्पण में प्रतिबिम्बित हुई। अलाउद्दीन ने रानी का प्रतिबिम्ब देखा। इस प्रकार उसकी पद्मिनी–दर्शन की शर्त्त पूरी हुई। ''किन्तु महल सात सौ साल पुराना नहीं लगता। उसका पलस्तर तो मध्यकालीन तक नहीं प्रतीत होता। दर्पण इत्यादि भी पुराने नहीं हैं।... ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मिनी की रूपकथा को चारणों इत्यादि ने युद्ध से सम्बद्ध कर दिया तथा जायसी ने 'प्रेम और युद्ध' की लोकप्रिय 'वस्तु' को 'रस' का रूप दे डाला, जिसे फरिश्ता ने ज्यों–का–त्यों स्वीकार कर लिया। तब से यह 'कथा' ही 'इतिहास' बन गई।''[21] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, ''राणा रत्नसिंह की कोई रानी वास्तव में पद्मावती नाम की थी या नहीं तथा उसकी कोई छाया दर्पण में देख कर अलाउद्दीन उस पर विशेष रूप से आसक्त हुआ, उसने राणा रत्नसिंह को वंदी बनाया और उसे छुड़ाने के लिए डोलियाँ भेजी गई या नहीं, जैसे प्रश्नों के उत्तर विशुद्ध इतिहास देता हुआ नहीं दीख पड़ता और इसके लिए केवल अनुश्रुतियों का ही सहारा लेना पड़ता है।... इसमें संदेह नहीं कि इसकी मूल कथा का कोई–न–कोई अंश, चाहे वह जिस किसी भी रूप में रहा हो, जायसी के पहले से विद्यमान था और उसके द्वारा भारतीय वीरों के आत्मत्याग एवं श्रत्राणियों की सतीत्व–रक्षा जैसे महान् आदर्शों को उदाहृत करने वाले साहित्य का सृजन भी होता आ रहा था। जायसी ने उसका पद्मावत के लिए उपयोग करते समय स्वभावतः अपने सूफी मंतव्यों तथा 'मज़हबे इस्लाम' की प्रतिष्ठा की ओर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक समझा और तदनुसार उसमें अनेक ऐसी बातों का भी समावेश कर दिया, जो काव्योचित कल्पना की दृष्टि से अस्वीकार्य नहीं है। कम–से–कम इसके कथानक को ले कर तथा अनेक अंशों को न्यूनाधिक महत्त्व देते हुए जायसी के अनंतर कई कवियों ने रचनाएँ प्रस्तुत की तथा बहुतों ने 'पदमावत' से प्रभावित होकर इसके अन्य भाषाओं में सुन्दर अनुवाद कर डाले।''[22] ऐसे अनुवादकों एवं स्वतंत्र काव्य–रचयिताओं में उन्होंने फारसी कवि अब्दुश्शकर 'बज़मी' (पदमावत, 1618ई.) तथा आक़िल खाँ 'राज़ी' (शमा–परवाना 1658 ई.), फारसी–गद्यकार राय गोविन्द मुंशी (1595 ई.), पश्तो कवि इब्राहिम, उर्दू कवि गुलाम अली (पदमावत, 1679 ई) और अली वेल्लोरी (रतन–पदम) का उल्लेख किया है। बांग्ला के कवि रंगलाल वंद्योपाध्याय (1858 ई.) ने 'पद्मावती' उपाख्यान में गोरा–बादल के युद्ध–प्रकरण को ही विशेष महत्त्व देते हुए उसमें राष्ट्रवाद की भावना भरने का प्रयत्न किया। हिन्दी के हेमरतन, लब्धोदय, जटमल नाहर सदृश कवियों ने भी इसी अंश को केन्द्र में रखा। ''उनकी रचनाओं पर विचार करने पर हमें ऐसा लगता है कि ये सभी लोग संभवतः किसी लोकप्रिय अनुश्रुति का अनुसरण करते आ रहे हैं किन्तु जायसी ने इसके साथ ही पद्मावती वाले प्रसंग का चित्रण ऐसे ढ़ंग से कर दिया है, जिसके अनुसार वह प्रचलित लोकगाथाओं वाली सिंहल की पद्मिनी भी बन जाती है और उसके लिए हीरामन तोता, अपार समुद्र और विकट यात्रादि तक को भी लाना पड़ जाता है।''[23]

वास्तव में संवेदनाओं एवं सोच के उभय धरातलों पर अपने समयुगीन कवियों से पूर्णरूपेण अलग होने के कारण जायसी ने मौलिक कथा की सर्जना करने में अभूतपूर्व ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की है। यह कथा उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ज्वलन्त निदर्शन है। इसमें कल्पना का चमत्कार सोद्देश्य है। उसमें अतीव आकर्षक 'समझ' अंतर्निहित है। प्रो. विजयदेव नारायण साही ने तार्किक प्रमाणों के साथ जायसी की इस महान क्षमता को उद्घाटित किया। उनकी 'जायसी' शीर्षक पुस्तक ने इस महाकवि को एक बिलकुल ही भिन्न दृष्टि से देखने को विवश किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ''जायसी–ग्रन्थावली की भूमिका'' के सदृश साही जी की 'जायसी' भी पदमावत के विद्यार्थी के लिए अनिवार्य रूप से पठनीय है।

शुक्ल जी ने पदमावत की संपूर्ण आख्यायिका को दो भागों में विभक्त किया है। रत्नसेन की सिंहलद्वीप–यात्रा से ले कर पद्मिनी के साथ चित्तौड़ लौटने तक की कथा को उन्होंने पूर्वार्द्ध और राघव–चेतन के चित्तौड़ से निष्कासन से लेकर पद्मिनी के सती होने तक को उत्तरार्द्ध माना है। पूर्वार्द्ध कल्पित कहानी है। उनके अनुमान में जायसी ने प्रचलित को ही ले कर, सूक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुंदर स्वरूप दिया है। उत्तरार्द्ध को वे ऐतिहासिक आधारों पर रचित मानते हैं। आचार्य ने प्रमाण रूप में कर्नल टॉड के ग्रन्थ को लिया है। कर्नल टॉड की साक्षियाँ मुख्य रूप से राजपुताने के भाटों एवं चारणों द्वारा दिए गए विवरणों पर आधारित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में स्थूल तथ्यों में ''कुछ फेरफार'' करना कवि का जन्मसिद्ध अधिकार है। शुक्ल जी के अनुसार जायसी ने इस भाग में भी सार्थक एवं मार्मिक कल्पनाएँ की है।[24]

प्रोफेसर विजयदेव नारायण साही ने पदमावत की कथा को सम्पूर्णता में जायसी की मौलिक कल्पना–शक्ति से उद्भूत प्रमाणित किया। वे महाकाव्य की कथा को आद्यंत जुड़ी अखण्डित इकाई के रूप में देखते हैं। इसके जुड़ाव या बनावट में दो भुजाओं वाला संतुलन है। उत्तरार्द्ध की कथा का भी कोई ऐतिहासिक–प्रामाणिक आधार नहीं है। इतिहासकारों ने कर्नल टॉड द्वारा महान् श्रम कर के लिखे गए राजपुताने की इतिहास गाथाओं को प्रामाणिकता की दृष्टि से पर्याप्त संदिग्ध माना है। साही जी अपनी स्थापनाओं के समर्थन में तर्क देते हुए लिखते हैं कि अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बरनी, इसाकी इत्यादि इतिहासकारों ने चित्तौड़–विजय के वृत्तांत दिए हैं। इनमें पद्मावती का कहीं भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता। पद्मिनी कतिपय राजस्थानी लोकगाथाओं तथा फरिश्ता के विवरणों

में अवश्य ही उल्लिखित हैं, लेकिन ये जायसी के परवर्ती हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफ़ेसर कानूनगो ने गोरा और बादल को पूर्णतया कल्पित चरित्र माना है। प्रोफेसर दशरथ शर्मा ने कुंभलगढ़ में राणा कुंभा के शिलालेख का हवाला दिया है, जो 1460 ई. अर्थात् जायसी से पहले का है। इस शिलालेख से मिली सूचना के अनुसार अलाउद्दीन खिल्जी के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय किले पर स्वामित्व राणा समरसिंह का था। उनके पुत्र का नाम रत्नसिंह था। इस शिलालेख में कहीं भी पद्मावती, गोरा और बादल का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। रत्नसेन मेवाड़ी सीसोदिया चरित्र के शतशः विपरीत कलंकित निर्वीर्यता का प्रदर्शन करते हुए पलायन कर गया था। इसीलिए उसका उल्लेख अवमानना–अनादर सूचक शब्दों में किया गया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. माता प्रसाद गुप्त, डॉ. रामप्रसाद मिश्र सदृश विद्वानों ने पद्मिनी के रूप और गोरा, बादल के शौर्य की कथाओं को लोक में प्रचलित गाथाओं का परिणाम बतलाया है। प्रो. साही के अनुसार डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अपनी मान्यता के समर्थन में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। निश्चित रूप से यदि जायसी से पहले ऐसी कोई लोककथा समाजों में प्रचलित थी, तो उसका प्रमाण दिया जाना चाहिए। केवल प्रोफेसर दशरथ शर्मा ने अवश्य ही नारायण दास तथा रतनरंग द्वारा रचित 'छिताईवार्त्ता' के एक प्रसंग का हवाला दिया है। इसके एक छंद में अलाउद्दीन रत्नसेन को बांधने, बादल द्वारा उसे मुक्त कराने तथा पद्मिनी का नाम सुनने की बात कहता है। प्रो. साही इस छंद को रतनरंग द्वारा रचित मानते हैं। रतनंरगं जायसी के परवर्ती हैं। इसके अतिरिक्त छिताई देवगिरि की थीं। देवगिरि–विजय पहले हुई थी। चित्तौड़ पर आक्रमण उसके उपरांत किया गया था। इसलिए भी छिताईवार्त्ता में पद्मिनी रानी, रत्नसेन, गोरा और बादल के प्रसंग का कोई तार्किक तुक नहीं बनता। वास्तविकता में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता जो जायसी द्वारा निरूपित कथा को मौलिक मानने का निषेध कर सके। इसीलिए साही जी का निर्णय है कि यदि यह मान भी लिया जाए कि कोई छोटी–सी रूपहीन कथा विद्यमान थी, तब भी जायसी की कल्पना को उत्तर कथा में पूरी छूट प्राप्त थी। अतएव इतिहास का शिंकजा उनके लिए न तो नियामक था और न ही बाधक।''[25]

निष्कर्ष के तौर पर पदमावत के दो चरित्र रत्नसेन और अलाउद्दीन खिल्जी ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध होते हैं, लेकिन नामसाम्यता के अतिरिक्त इतिहास उल्लिखित एवं जायसी–निरूपित इन दोनों व्यक्तियों में किसी तरह की कोई साम्यता दिखाई नहीं देती। जैसाकि राणा कुंभा के 1460 ई. के कुंभलगढ़–शिलालेख से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है, ऐतिहासिक राजकुमार रत्नसिंह अलाउद्दीन के आक्रमण के समय कायरतापूर्वक पलायन करने के कारण अनादर एवं उपेक्षा का पात्र बना। उसके विपरीत पदमावत का रत्नसेन अति रसिक होते हुए भी एक जांबाज़ व्यक्ति है। वह 'विक्रम' की तरह 'साका' करता है। इसी भाँति ऐतिहासिक अलाउद्दीन खिल्जी जायसी के महाकाव्य में बिल्कुल ही अलग तरह की 'शोभा' धारण किए दृष्टिगत् होता है।

जायसी ने सुल्तान की चित्तौड़–विजय की घटना इतिहास से ग्रहण की है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। लेकिन इस घटना का पद्मावत की मूल संवेदना और समझ से कुछ विशेष लेना–देना नहीं है। इतिहास के अलाउद्दीन खिल्जी ने राजनीतिक लिप्सा से प्रेरित हो कर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इसके विपरीत पदमावत के अलाउद्दीन का विध्वंसकारी अभियान साम्राज्यवादी लक्ष्यों से शतशः निरपेक्ष है। वह निसर्ग की अद्वितीय–अप्रतिम सुन्दरी स्त्री के प्रति प्रेम से परिचालित है। उसका उद्देश्य साम्राज्य का विस्तार करना कतई नहीं है, बल्कि वह अपनी राज्य–सीमा में स्वेच्छा से कटौती करने को तैयार है, बशर्त्ते उसे पदमावती दे दी जाए। उसकी कामना पद्मिनियों की अधिष्ठात्री देवी को अपने हरम में लाने की है। चित्तौड़ का किला उसके लिए महत्त्वहीन चीज़ है। पदमावती की कीमत के तौर पर वह चंदेरी का किला देने का प्रस्ताव रखता है। महाकाव्य में सुल्तान प्रेम–मार्ग के अविचलित–अडिग पथिक के रूप में दृग्गत होता है। उसकी ऐसी प्रतिष्ठा बड़े आग्रह के साथ की गई है। जायसी ने अपने अंतिमप्राय वक्तव्य में उसे पुष्पवत् धन्य घोषित किया है। उन्होंने सुल्तान की 'कहानी' से निःसृत कीर्तिसुगन्ध के चिरंतन होने की भविष्यवाणी की है।

तासौं का बड़ बोलसि बैठि न चितउर खासि।
ऊपर लेहि चँदेरी का पदुमिनि एक दासि।।[26]
कहाँ अलाउदीन सुलतानू।...
....कोइ न रहा जग रही कहानी।।...
धनि सो पुरुख जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।।[27]

स्पष्ट है कि पदमावत के उत्तरार्द्ध की कथा भी जायसी की विलक्षण– उर्वरा कल्पना शक्ति का परिणाम है। प्रो. विजयदेव नारायण साही ने इतिहास और साहित्य के पारंम्परिक संबंधों को अत्यंत विदग्धतापूर्वक विवृत करते हुए अतीव गंभीर सत्य का उद्घाटन किया है, ''इतिहास ने काव्य–कृतियों को इतनी बार जन्म दिया कि यह मानने में विद्वानों को हिचक होती है कि सचमुच एक काव्यकृति ऐसी है जिसने अक्षरशः इतिहास को जन्म दिया। लेकिनसंसार के साहित्य में, कम ही सही, ऐसी कृतियाँ अवश्य हुई है जिन्होंने इस प्रकार इतिहास का, विशेषतः जातीय इतिहास का निर्माण किया। पदमावत की यह क्षमता और उसका यह विशिष्ट प्रभाव, पदमावत के संपूर्ण अर्थ पुंज का महत्त्वपूर्ण अंश है।''[28] साही जी द्वारा कथा को मौलिक सिद्ध करने की स्थापना से सहमत हुआ जा सकता है, लेकिन महाकवि जायसी की रुचि किसी भी तरह के इतिहास या जातीय इतिहासकी रचना करने में नहीं प्रतीत होती। उनकी मूलभूत–आंतरिक चिन्ता एक विशेष प्रकार की ऐसी व्यवस्था को बनाने तथा उसे चिरन्तन रूप में स्थापित करने की है, जिसमें श्रेष्ठतम इकाईयाँ तथा उनके समूह अकुण्ठित आनंद का अप्रतिहत भोग करते हैं। इस चिन्ता के कारण ही उन्होंने कथा की कल्पना की। मानवीय इतिहास से संबंधित जायसी के बोध को समझने के लिए कथा की कल्पना के प्रेरक कारणों का तटस्थ अनुसंधान अनिवार्य है। यह शोधकार्य तत्कालीन भक्ति–आंदोलन से निःसृत मूल्यों से स्वतन्त्र होकर ही किया जा सकता है क्योंकि जायसी भक्त कवि नहीं है। वे अंततोगत्वा 'प्रेम' के नहीं, 'प्रेमोन्माद के महाकवि हैं क्योंकि जिस आनंद की स्पृहा उन्हें है, वह चेतना के स्थान पर शरीर में केन्द्रित है। इसलिए रत्नसेन की मृत्यु, पद्मावती–नागमती के सती होने के वृत्तांत, भारी नरसंहार के पश्चात् चित्तौड़ के पतन और समस्त चरित्रों के कालावधि में विलीन हो कर सुगंध रूप में अमर होने के कथनों से विकीर्ण होती अपार करुणा की तरंगों में डूबने–उतराने और हतप्रभ होने पर पदमावत के वास्तविक अर्थों तक नहीं पहुँचा जा सकता। उसी युग में कबीर, सूर, तुलसी सदृश कालजयी प्रतिभाओं ने आध्यात्मिक दर्शनों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के जीवंत इतिहासों से यथासमय अवसरानुसार–आवश्यकतानुसार प्रेरणा लेते हुए अपनी मौलिक मान्यताओं और ललित आकांक्षाओं को विराट–व्यापक लोकमानस के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया। लेकिन जायसी हर तरह की विरासत को चालू मुहावरे के तौर पर प्रयोग में लाते हैं। उसमें काट–छांट करके, अधिकाधिक परिष्करण ला कर ज्यादा–से–ज्यादा उपयोगी बनाने में उनकी रुचि नहीं है। सौन्दर्य एवं प्रेम से संबंधित

मार्मिकतम् कहानियों की भारतवर्ष में कभी कमी नहीं रही। इन कहानियों में आनंद और विषाद की कमी नहीं है। लेकिन ऐसी किसी कहानी ने उन्हें आकर्षित नहीं किया। इसलिए उन्हें समझने के लिए केवल पदमावत के टेक्स्ट को ही आधार बनाना होगा। साथ–ही–साथ उनकी इतिहास की समझ से परिचित होने के लिए सम्पूर्ण कृति को केन्द्र में रखना होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कथा केपूरे उत्तरार्द्ध का आधार ऐतिहासिक मान कर और सूफी तसव्वुफ का घेरा लगा कर समीक्षात्मक निर्णय दिए। इसीलिए उन्होंने ग्रंथ को 'प्रेमगाथा' या ''श्रृंगाररसप्रधान'' काव्य मानते हुए इसमें प्रेम की पीड़ा एवं आनंद के दर्शन किए। आचार्य ने जो कहा, वह सब–कुछ काव्यकृति में है– लेकिन वह उसकी मूल संवेदना अथवा केन्द्रीय भाव नहीं है। जायसी का अंतिम उद्देश्य मनुष्य की किसी मूल मनोवृत्ति का विश्लेषण करना नहीं है। जितना मनुष्य लक्षित होता है, जायसी उसी को अंतिम मानते हैं। वह कितना अलक्षित है– यह जानने की उनकी आकांक्षा नहीं है। पदमावत की कथा की पूरी योजना इसी मानसिकता के तहत हुई है। वह उसी लक्षित मनुष्य से शुरू होकर उसी पर खत्म होती है। इसलिए कतिपय विशिष्ट अंशों की तीव्र मार्मिकता को पूरे ग्रंथ पर थोपना समीचीन नहीं होगा। यह जायसी के साथ–साथ सहृदय के साथ भी अन्याय होगा।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 87 से 91
2. जायसी ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल,
3. नवरत्न, मिश्रबन्धु
4. विनोद, मिश्रबंधु, सूफी कविता पर विचार
5. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास, रामप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 116
6. अनुराग–बाँसुरी, नूर मोहम्मद
7. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास, पृष्ठ 133
8. पदमावत, जायसी
9. अखरावट, जायसी
10. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास,रामप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 139
11. जायसी–ग्रंथावली की भूमिका,रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 30 से 32
12. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 1
13. वही, पृष्ठ 87
14. रामाज्ञाप्रश्न (तुलसी), शकुन–विचार का काव्य है।
15. पदमावत, 24/1
16. वही, 13/1
17. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास, रामप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 138–139
18. नुह सिपेहर, अमीर खुसरो
19. एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, रमेशचन्द्र मजूमदार
20. लहर, जयशंकर प्रसाद
21. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास, रामप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 139–140
22. हिन्दी साहित्य कोष (भाग दो), सं. धीरेन्द्र वर्मा
23. वही
24. जायसी–ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 22 से 24
25. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 82 से 87
26. पदमावत, 490/8–9
27. वही, 652/ 5 से 7
28. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 87